इकाई 13 भेदभाव के आधार के रूप में सामाजिक-लिंग सोच

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- लिंग आधारित भूमिकाओं के अर्थ को समझकर उनकी परिभाषा दे सकेंगे;
- लिंग आधारित भूमिका रूढ़ि प्ररूपों (स्टीरियोटाइप) के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- लिंग भूमिकाओं से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों पर रोशनी डाल सकेंगे;
- श्रम के लैंगिक विभाजन और सामाजिक लिंग सोच-जन्य स्तरीकरण की रूपरेखा स्पष्ट कर सकेंगे; और
- विभिन्न समाजों में महिलाओं की दासता पर रोशनी डाल सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

हर मनुष्य लिंग से स्त्री या पुरुष होता है। अपने सामाजिक व्यवहार में व्यक्ति जो हिस्सा लेता है उसे ही हम 'भूमिका' कहते हैं। इस प्रकार महिला और पुरुष भिन्न-भिन्न भूमिकाएं अदा करते हैं। लिंग-जन्य भूमिका वह भूमिका है जिसे वह अपने लिंग के कारण अदा करता है। कालांतर में इसे *लिंग-जन्य भूमिका रूढ़ि* प्ररूपों का जन्म होता है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की भूमिकाओं को ऊंचा दर्जा या प्रतिष्ठा मिलती है। मगर वहीं महिलाएं जो भी करती हैं उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है।

लंबे समय तक यह माना जाता था कि स्त्री और पुरुष के शारीरिक भेद का उनमें विद्यमान भावनात्मक और बौद्धिक भेदों और उनकी शारीरिक क्षमताओं में पाए जाने वाले भेदों से घनिष्ठ संबंध है। हमारी सांस्कृतिक परंपरा में पुरुषों और महिलाओं को कार्य और भूमिकाएं सौंपी गई थी उन्हें भी उनकी शारीरिक क्षमताओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा माना जाता था।

पितृसत्ता का मतलब पुरुष के हितों की साधना करना है। लिंग-जन्य भूमिकाओं का विभाजन कुछ इस तरह से किया गया है कि उसमें पुरुषों का दायित्व उत्पादन तो महिलाओं का दायित्व प्रजनन है। स्त्री अपने घर में जो अवैतनिक अनदेखा कामकाज करती है उसे पुरुषों द्वारा घर से बाहर किए जाने वाले कार्य से तुच्छ समझा जाता है। महिलाओं को कामवासना की दृष्टि से असुरक्षित और कमजोर माना जाता है। इसलिए कई समाजों में उन पर कई किस्म के अंकुश लगा दिए जाते हैं और उनमें प्रचलित रस्मों और वर्जनाओं को उनके जीवन की विभिन्न जैविक घटनाओं से जोड़कर देखा जाता है।

13.2 लिंग-जन्य भूमिका संबंधी सिद्धांत

अब हम लिंग-जन्य भूमिकाओं से संबंधित धारणाओं और उनके विभिन्न पहलुओं पर गौर करेंगे।

13.2.1 लिंग-जन्य भूमिकाओं का जैविकीय सिद्धांत

जॉर्ज पीटर मुरडोक पुरुष और स्त्री में विद्यमान जैविक भेदों को समाज में श्रम के लैंगिक विभाजन का आधार मानते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार चूंकि पुरुषों में शारीरिक शक्ति अपेक्षतया अधिक होती है, इसलिए वे ऐसी भूमिकाएं लेते हैं जिन्हें अंजाम देने के लिए शारीरिक शक्ति की जरूरत पड़ती है। स्त्रियां बच्चों को जन्म दे सकती हैं और इसीलिए उन्हें परिवार के पालन-पोषण से जुड़े क्रियाकलापों से जोड़ा जाता है।

लायोनेल टाइगर और रॉबिन फॉक्स कहते हैं कि जैविक कारक मनुष्य के व्यवहार को "प्रोग्राम" करते हैं यानी उसकी रूपरेखा को तय करते हैं हालांकि सांस्कृतिक भिन्नताएं अवश्य हो सकती हैं। इसे दोनों विद्वान "ह्यूमन बायोग्रैमर" (यानी मानव जैव-योजना) की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार स्त्री और पुरुष के "बायोग्रैमर" में कुछ फर्क होता है।

अमेरिकी समाजशास्त्री टालकोट पारसंस परिवार में स्त्री की भूमिका को "अभिव्यक्तिपरक" मानते हैं जो शिशु के समाजीकरण के लिए जरूरी भावनात्मक सहारा और उष्मा प्रदान करती है। दूसरी ओर पुरुष की भूमिका को समाज के *जीविकोपार्जक* के रूप में "साधक" माना जाता है। ये दोनों "अभिव्यक्तिपरक" और "साधक" भूमिकाएं समाज के लिए अनिवार्य और एक दूसरे की पूरक हैं।

13.2.2 लिंग-जन्य भूमिकाओं का जैविकीय सिद्धांत

प्रसिद्ध ब्रिटिश समाजशास्त्री ऐन ओकले के अनुसार 'सेक्स' यानी लिंग एक जैविक शब्द है मगर 'जेंडर' (सामाजिक लिंग सोच) एक सांस्कृतिक शब्द है, जिसका अभिप्राय समाजीकरण के पश्चात व्यक्ति के लिंग से है।

मुरडोक की धारणा को अस्वीकार करते हुए ओकले तर्क देती हैं कि श्रम का विभाजन सर्वव्यापी नहीं है। वह इस तर्क को सिर्फ कोरा मिथक मानती हैं कि महिलाओं जैविकी की दृष्टि से भारी और कठोर काम करने की क्षमता नहीं होती। उनका कहना है कि मां के रोजगार करने से बच्चे के विकास पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। उनके अनुसार पारसंस ने महिलाओं की "अभिव्यक्तिपरक भूमिका" और पुरुषों की "साधक भूमिका" की जो व्याख्या दी वह पुरुषों की सुविधा के लिए है।

समाजशास्त्र के मूर्धन्य प्रवर्तक एमीले दुर्खीम ने कहा कि आदिम समाजों में पुरुष और स्त्री शक्ति और बुद्धिमत्ता में समान थे। मानव सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ समाज में नई संहिताएं भी विकसित होती गईं जिन्होंने महिलाओं के घर से बाहर काम करने पर अंकुश लगाए। इस तरह स्त्रियां धीरे-धीरे अबला और बुद्धिहीन होती गईं।

व्यक्ति के जन्म लेते ही समाजीकरण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। लिंग-जन्य भूमिकाएं अधिगत यानी सीखे हुए क्रिया-कलाप हैं क्योंकि बच्चों का समाजीकरण इन्हीं भूमिकाओं में किया जाता है। उन्हें इन्हीं

भूमिकाओं में ही ढाला जाता है। इसलिए लिंग-जन्य भूमिका का आबंटन एक विशिष्ट क्रिया है, जो असल में अधिगत व्यवहार है। महिलाओं को सदियों से निष्क्रिय भूमिकाओं में ढाला गया है, उनका समाजीकरण किया गया है।

13.3 लिंग भेदों का विकासीय परिप्रेक्ष्य

मैलिनोशी, रैडक्लिक ब्राउन जैसे शुरुआती मानवविज्ञानियों ने महिलाओं की भूमिका को कम करके आंका था। इन सभी ने मुख्यत: पुरुषों पर ही अपने अध्ययन को केन्द्रित किया था। तिस पर उन्होंने सामुदायिक जीवन पर ही नहीं बल्कि समुदाय में महिलाओं की भूमिका से संबंधित जानकारी भी गांव के पुरुषों से ही जुटाई। पुरुषों के प्रति उनके इस झुकाव को विख्यात मानवविज्ञानी मार्गरैट मीड ने आड़े हाथों लिया। उन्होंने प्रशांत महासागरीय द्वीप में बसे आदिम मानव समाजों का गहन अध्ययन किया था।

श्रम के लैंगिक विभाजन पर 1930 के उत्तरार्ध और 1960 के बीच के दौर में जो अंत: सांस्कृतिक आंकड़े और जानकारियां मिलीं उन्होंने इस धारणा को धराशायी कर दिया कि हमारे समाज में पुरुष महिलाओं को सौंपे जाने वाले कुछ कार्य नहीं कर सकते और इसी प्रकार स्त्रियां पुरुषों के कार्यों को नहीं कर सकतीं। कुछ समाजों में आज भी बुनाई, कताई और खाना बनाना जैसे घरेलू कामकाज पुरुषों के कार्यक्षेत्र में आते हैं जबकि मोतियों के लिए गोताखोरी करना, डोंगी चलाना और घर बनाने जैसे साहसिक और कठोर कार्यों को महिलाएं अंजाम देती हैं। प्रशांत महासागरीय द्वीपों में बसी जनजातियों पर मार्गरेट मीड के प्रवर्तक शोधकार्य से ही इन मुद्दों पर नई रोशनी पड़ी। इस अध्ययन से मीड को पता चला कि इन आदिम जातियों में लिंग-जन्य भूमिकाएं और व्यक्तित्व पश्चिमी दुनिया से एकदम उलट हैं। अपनी इसी खोज के आधार पर उन्होंने इन भूमिकाओं के जैविकीय आधार को चुनौती दी।

मगर वहीं सरल समाजों में भी लिंग भेद मौजूद होते हैं। जैसे शिकार और भोजन का संचय करने वाले आदिम समाजों में शिकार करना पुरुषों का कार्य है क्योंकि इसमें घंटों चलना पड़ता है। प्रजनन और बच्चों के पालन-पोषण के दायित्वों के कारण महिलाओं के लिए ऐसा कर पाना कठिन होता है। लेकिन इन समाजों में स्त्रियां भी बड़ा कठोर श्रम है और खाद्य-अखाद्य पादपों और फलों की पहचान करने और जंगली जानवरों के पद-चिन्हों, उनके रास्तों को पहचानने में बड़ी निपुण रहती हैं। इसलिए स्त्रियां इन कामों को अंजाम देने में जो शारीरिक श्रम करती हैं वह पुरुषों के श्रम से भिन्न नहीं होता। इसके बावजूद भी इन समाजों में पुरुषों के वर्चस्व के चलते उनके कार्यों को अलग-अलग दर्जा दिया जाता है।

फ्राइडल का कहना है कि पुरुषों को सौंपे जाने वाले कार्यों को स्त्रियां पूरा करती हैं तो उन्हें वही प्रतिष्ठा हासिल नहीं होती। इसका मुख्य कारण पुरुषों का वर्चस्व है। समाज में पुरुषों का वर्चस्व इसलिए बनता है कि पुरुषों का जीवन अधिक सार्वजनिक होता है और स्त्रियों का जीवन संतानोत्पत्ति और शिशुओं के लालन-पालन के कारण अधिक निजी बन जाता है। इसीलिए पुरुष घरेलू समूह से बाहर वस्तुओं के वितरण पर स्त्रियों से अधिक अधिकार मांगता है। पुरुष जब कोई शिकार मारकर लाता है तो उसके मांस को पूरे समुदाय या कबीले में बांटा जाता है। मगर जब वही शिकार स्त्री लाती है तो उसे सिर्फ उसके कुनबे के लोग ही खाते हैं। इसी प्रकार मूल्यवान वस्तुओं के आदान-प्रदान पर भी पुरुषों का अधिकार अधिक रहता है।

बोध प्रश्न 1

1) सही या गलत बताइए।

a) पुरुष और महिलाएं एक दूसरे से भिन्न भूमिकाएं निभाते हैं। (ग़लत/सही)

b) सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) एक जैविकीय शब्द है। (ग़लत/सही)

c) व्यक्ति के जन्म लेते ही उसके समाजीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। (ग़लत/सही)

2) रिक्त स्थान भरिए।

a) .... स्त्री -पुरुष के बीच विद्यमान जैविकीय भेदों को श्रम के विभाजन का आधार मानते हैं।

b) .... ने प्रशांत महासागरीय द्वीपों में बसे आदिम समाजों का अध्ययन किया था।

नोट: अपने उत्तर की तुलना इकाई के आखिर में दिए गए उत्तरों से कीजिए।

13.4 उपनिवेशवाद और विकास

आज हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं जो जटिल राजनीतिक और आर्थिक संबंधों पर टिकी है। अधिकतर उपनिवेशों को हालांकि 1960 तक स्वतंत्रता मिल गई थी। लेकिन औपनिवेशिक काल में पूंजीवादी विश्व व्यवस्था का जो आर्थिक वर्चस्व शुरू हुआ उसमें कोई विशेष बदलाव नहीं आया। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी औद्योगिक या "विकसित" विश्व और "विकासशील" या तीसरी दुनिया के देशों के स्त्री-पुरुषों पर पूंजीवाद के प्रवेश और भूमंडलीय अर्थव्यवस्था में उनके समाजों के एकीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है।

विश्व के कई भागों में मूलत: समतावादी सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) संबंधों की जगह अब क्रम परंपराबद्ध संबंधों ने ले ली है। इसके फलस्वरूप महिलाओं को हाशिए पर धकेल दिया गया है। औपनिवेशिक काल से पहले उन्हें आर्थिक और राजनीतिक निर्णय के जो पद-स्थान हासिल थे उनसे उन्हें हटा दिया गया है। पुरुष को ध्यान में रखकर बनाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों के चलते स्त्री-पुरुष के बीच श्रम का नए ढंग से विभाजन हुआ है जिसने महिलाओं को पुरुषों पर और ज्यादा निर्भर बना दिया है।

पुरुषों पर महिलाओं की बढ़ती निर्भरता नगरीकरण की प्रक्रिया, घर-परिवार से निकल कर कारखाने और उद्योग में काम करने, पारंपरिक खेती से नकदी फसलों के चलन से भी उत्पन्न हुई है। कुछ समाजों में महिलाओं को भूमि पर जो पारंपरिक अधिकार हासिल था, वह उनसे छिन गया है। पुरुष यूं तो महिलाओं की पारंपरिक सहायता पर आश्रित रहते हैं लेकिन फसलों को बेचने से होने वाली पूरी आमदनी पर वे अपना अधिकार जमाते हैं।
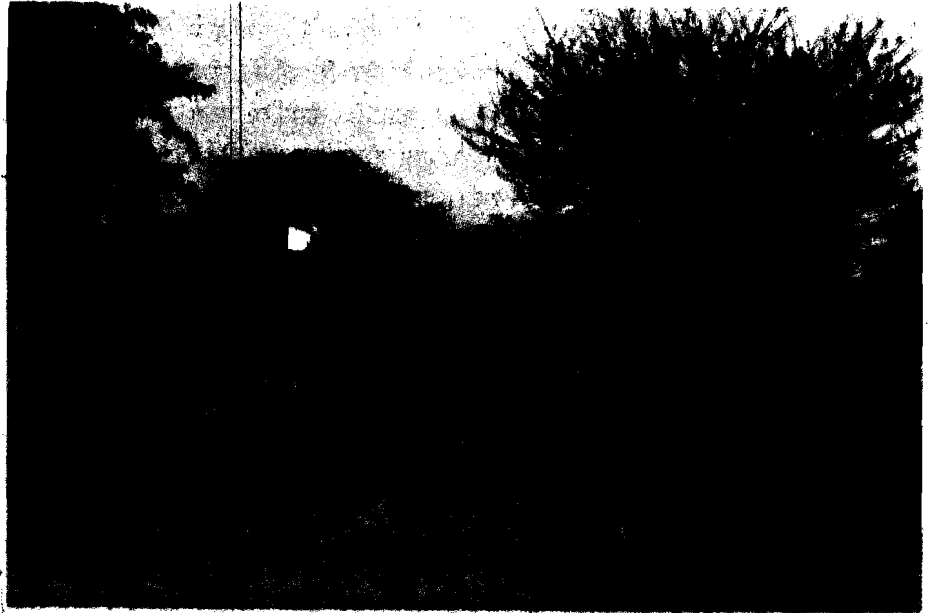
अहाता साफ करती हुई महिलाएँ
साभार : किरणमई बुसी

13.5 महिलाओं पर विकास का प्रभाव

भारतीय जनसांख्यिकविदों ने घटते स्त्री-पुरुष अनुपात को समझने के लिए कई अनुमान रखे हैं जिनके अनुसार इसके निम्न पांच कारक हैं:

i) भारतीय जनगणना में स्त्रियों की संख्या अधूरी बताई जाती है।

ii) महिलाओं में सामान्य मृत्यु दर पुरुषों से अधिक है।

iii) भारतीय परिवारों में पुत्रों को अधिक महत्त्व दिया है जिसके फलस्वरूप मादा शिशुओं को उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। इसके चलते महिला मृत्यु दर अधिक होती है।

iv) बारंबार और अत्यधिक संतानोत्पत्ति का महिलाओं के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

v) कुछ बीमारियां महिलाओं में अधिक होती हैं।

इससे स्त्री के प्रति समाज के नजरिए और समाज में स्त्री की भूमिका के प्रति रवैयों का सवाल उठता है। हम इस निष्कर्ष से नहीं बच सकते कि भारत समेत अनेक देशों के लोगों में बेटों के प्रति जो अधिक चाह पाई जाती है उसके मूल में समाज में महिलाओं और बेटियों की निम्न स्थिति ही है। इतना ही चिंताजनक एक बात यह है कि विकास के प्रयत्नों, चिकित्सा और स्वास्थ्य सुविधाओं से लेकर कृषि विस्तार परियोजनाओं समेत तरह-तरह की जन सेवाएं जब लोगों को प्रदान की जाती हैं, तो यह पारंपरिक पुरुष पूर्वाग्रहों को और मजबूत बनाती हैं या महिलाओं को पारंपरिक समाज में जो दर्जा हासिल था उसे कम करती हैं।

13.5.1 ग्रामीण भारत में मादा शिशु हत्या और शिशु की उपेक्षा

इसमें कोई संदेह नहीं रह गया है कि भारत में आज भी बड़े व्यवस्थित तरीके से मादा शिशुओं की प्रत्यक्ष हत्या की जाती है। यह दो तरह से किया जाता है। पहला है लिंग चयन गर्भपात, जिसमें मादा भ्रूण को गर्भपात कराके मार दिया जाता है और दूसरा है प्रत्यक्ष मादा शिशु हत्या, जिसमें एक वर्ष से कम आयु की बच्ची को मार दिया जाता है। राजस्थान में ऐसे कुछ गांव हैं जिनमें कन्याएं नाम भर को भी नहीं हैं। तमिलनाडु के सालेम जिले में मादा शिशुओं की सरेआम हत्या की जाती है।

मादा शिशु हत्या प्रोक्ष रूप से भी होती है। असल में बलिकाओं का पोषण और स्वास्थ्य सुरक्षा से वंचित रखा जाता है। इस वंचना और उपेक्षा के फलस्वरूप ही बेटियों में मृत्यु दर काफी ज्यादा पाई जाती है। भारत के देहाती इलाकों में बेटों को बहुत ज्यादा तरजीह दी जाती है। बेटों को रत्न माना जाता है, खेतीबाड़ी के लिए वे जरूरी हैं और जब वे गांव छोड़कर रोजगार के लिए शहरों की ओर चले जाते हैं तो वे अपने परिवार की आमदनी का स्रोत बन जाते हैं। स्थानीय स्तर पर पानी और जमीन के लिए जो शक्ति संघर्ष छिड़ता है उसमें भी बेटों की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। विवाह के बाद बेटे अपने परिवार में ही रहते हैं और अपने मां-बाप को बुढ़ापे में सहारा देते हैं और उनकी देखभाल करते हैं। मगर बेटियों का विवाह हो जाने के बाद अपने मायके की देखभाल में कोई योगदान नहीं रहता।

बेटे का विवाह होने पर उसे दहेज मिलता है। इसके उलट बेटी अपने परिवार पर आर्थिक बोझ होती है क्योंकि विवाह पर उसके ससुरालियों को दहेज और फिर विवाह के बाद भी मौके-बेमौके उन्हें उपहार देना जरूरी होता है। हिन्दुओं में यह धारणा भी प्रचलित है कि परिवार को अनिष्ट से बचाने के लिए जरूरी है कि सारे संस्कार पुत्रों को ही करने चाहिए। पिता की मृत्यु के बाद बेटियों को इस तरह के संस्कार करने का कोई अधिकार नहीं रहता है। पुत्र के लिए ऐसी चरम चाह निम्न जातियों और वर्गों के बजाए ऊंची जातियों और उच्च वर्गों में अधिक देखने को मिलती है।

13.5.2 सामाजिक लिंग सोच, परिवार और नातेदारी

आइए, अब ताइवानी महिलाओं का उदाहरण लेते हैं। ताइवान में महिला अपने पति के परिवार में विवाह करती है। वूल्फ के अनुसार ताइवानी पत्नी को अपने पति के पुरखों को श्रद्धांजली देनी पड़ती है, अपने

पति और सास की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। अपने पति के पितृवंश को चलाने के लिए उसे संतानोत्पत्ति भी करनी पड़ती है। ताइवानी पत्नी जब बेटे को जन्म देती है तो ससुराल में उसकी स्थिति, उसका ओहदा बदलने लगता है। और अपने जीवनकाल में जैसे-जैसे वह एक नए कुल का सृजन करती जाती है उसकी प्रतिष्ठा उतना ही बढ़ती जाती है। वूल्फ इसे मातृज कुल कहते हैं जो मां और बेटों के बीच घनिष्ठ संबंधों से बनता है। ताइवानी पत्नी जब सास बनती है तो उसे अपने पति के कुटुंब में सबसे ज्यादा सत्ताधिकार और दर्जा हासिल होता है।

13.5.3 एंजेल्स लीकॉक के विचार

एंजेल्स लीकॉक के अनुसार आरंभिक सामुदायिक समाज आत्मनिर्भर थे। स्त्री-पुरुष मिल-जुलकर काम करते थे और कोई एक-दूसरे पर निर्भर नहीं था। इस प्रकार उनमें श्रम का पारस्परिक विभाजन था। इनमें पुरुषों के सार्वजनिक कार्यक्षेत्र और स्त्री का निज कार्यक्षेत्र था। घरेलू कामकाज के बीच कोई विभाजन भी नहीं था। स्त्री-पुरुष दोनों जीवन-निर्वाह के लिए अनिवार्य वस्तुओं का उत्पादन करते थे। इस प्रकार के समाज में सिर्फ दैनिक जरूरतों की पूर्ति के लिए ही वस्तुओं का उत्पादन होता था। कालांतर में औद्योगीकरण की प्रक्रिया शुरू होने पर वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा तो व्यापार और वस्तु विनिमय के चलन ने जोर पकड़ा। अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिए पूंजीपति महिलाओं और कामगारों का शोषण करने लगे। इसके फलस्वरूप परिवार एक पृथक इकाई के रूप में अलग हो गया और फिर महिलाएं अपने परिवार के दायरे में सिमटती चली गईं। इस प्रकार कार्य स्थान और आवास दोनों अलग-अलग हो गए।

13.5.4 समानता और असमानता: श्रम का लैंगिक विभाजन और सामाजिक लिंग-सोच जन्य स्तरीकरण

अधिकांश समाजों में कुछ खास काम मुख्यत: पुरुषों तो कुछ स्त्रियों को सौंपे जाते हैं। यूरोपीय और अमेरिकी संस्कृतियों में पुरुष का अपने परिवार का जीविकोपार्जक होना "स्वाभाविक" माना जाता था तो महिलाओं से घर की देखभाल करना और बच्चों का पालन-पोषण करने की अपेक्षा की जाती थी। श्रम के इस विभाजन के मूल में यह धारणा निहित थी कि परिवार के कल्याण में पुरुषों का योगदान स्त्रियों से अधिक होने के कारण वे हावी रहते हैं। अब चूंकि स्त्रियां पुरुषों पर आश्रित थीं इसलिए वे अपने-आप उनके अधीन हो गईं।

महिलाएं जैसे-जैसे श्रम-शक्ति का अधिकाधिक हिस्सा बन रही हैं, श्रम के विभाजन की इस "स्वाभाविकता" को चुनौती दी जा रही है। लेकिन क्या इससे महिलाओं की स्थिति में अपने घर और वृहत्तर समाज में कोई सार्थक बदलाव आया है? या फिर क्या इसका मतलब यही है कि महिलाओं को अब "दोहरे दिन" काम करना पड़ रहा है—यानी अपने "असली" कार्य दिन से लौटकर उन्हें घर के वे सारे काम-काज पूरे करने पड़ रहे हैं जिन्हें महत्वहीन ही नहीं बल्कि काम समझा ही नहीं जाता है? रोजगार से अगर स्त्री की सामाजिक दशा उन्नत होती है तो फिर एक ही काम के लिए महिलाएं पुरुषों से सिर्फ 65 प्रतिशत ही क्यों कमा पाती हैं? सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) के आधार पर पेशागत पार्थक्य अब इतना ज्यादा क्यों है? महिलाओं की आर्थिक भूमिका और सामाजिक लिंग सोच-जन्य स्तरीकरण के बीच क्या संबंध है?

श्रम के लैंगिक विभाजन पर हुए अंत: सांस्कृतिक शोध कार्यों में अलग-अलग अर्थोपार्जन विधियों वाले समाजों में सिर्फ महिलाओं के उत्पादक क्रियाकलापों को बताने का ही प्रयास नहीं किया गया है, बल्कि इनमें महिलाओं की स्थिति पर उनके प्रभावों का मूल्यांकन करने का प्रयास भी किया गया है।

13.5.5 सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) की सांस्कृतिक रचना

हम सभी प्रतीकों की दुनिया में रहते हैं जो स्त्री और पुरुष की श्रेणियों को एक अर्थ और महत्व प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका जैसे सभ्य और विकसित देश में कई दशकों से जन चेतना बढ़ने के

बावजूद वहां टेलीविजन और पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले विज्ञापन आज भी लैंगिक रूढ़िप्ररूपों को ही दर्शाते हैं। यूं अब महिलाओं को ज्यादा से ज्यादा कार्य स्थल के संदर्भ में इन विज्ञापनों में दिखाया जाने लगा है। इसलिए "सुंदर घर" की छवि पेश करने वाले विज्ञापन हालांकि कम हो गए हैं लेकिन "सुंदर देह" वाले विज्ञापनों का प्रसारण अब भी बदस्तूर जारी है। यहां तक कि बच्चों के कार्टूनों में भी महिलाओं को अबलाओं के रूप में चित्रित किया जाता है। जिन्हें निडर पुरुष नायक बचाने आता है। इसी प्रकार छोटे लड़कों और लड़कियों को ध्यान में रखकर खिलौने ऐसे रंगों और कपड़ों में बनाए जाते हैं, जो सांस्कृतिक दृष्टि से पुरुषोचित और स्त्रियोचित माने जाते हैं। ओकले तर्क देती हैं कि अपनी प्रजननात्मक भूमिका के कारण महिलाओं को सभी जगह प्रकृति के समीप माना जाता है। लेकिन पुरुषों को संस्कृति से जोड़कर देखा जाता है। वे संस्कृति को मानव चेतना के रूप में परिभाषित करती हैं जिसमें उसी की उपज, जैसे प्रौद्योगिकी, शामिल होती हैं जिन्हें प्रकृति के नियंत्रण और दोहन के लिए प्रयोग किया जाता है। जो सांस्कृतिक है और जो मानवीय कौशल के वश्य है, उसे प्राकृतिक से अधिक महत्व दिया जाता है। इसीलिए महिलाओं की भूमिकाओं को स्पष्टतया या अव्यक्त रूप से कम करके आंका जाता है या उन्हें निम्न दर्जा दिया जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) श्रम के लैंगिक विभाजन पर होने वाले अंत: सांस्कृतिक शोधकार्य का क्या उद्देश्य होता है? लगभग दस पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

2) उत्तरी भारत में बेटों के प्रति इतनी प्रबल चाह क्यों है? दस पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

3) आरंभिक सामुदायिक समाजों के बारे में एंजेल्स लीकॉक के क्या विचार थे? दस पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

13.5.6 महिलाएं और घरेलू कामकाज

लगभग सभी देशों और वर्गों में महिलाएं उपेक्षित हैं। ओकले के अनुसार गृह प्रबंध की विशेषता यह है कि इसमें महिलाएं स्वायत्तता के एहसास को महत्व देती हैं। चूंकि गृहणियां अपने अनुभवों को यह कहकर व्यक्त करती हैं कि घर की स्वामिनी होने में उन्हें आनंद आता है। इसका यह मतलब नहीं कि उनकी कार्यदशा का विश्लेषण हम उन्हें अपने घर में प्राप्त अधिक स्वायत्तता से करें। उदाहरण के लिए, उसे

अलग-अलग मौकों पर अलग-अलग किस्म के व्यंजन बनाने के लिए कहा जाता है। फिर एक निश्चित समय के अंदर उसे खाना बनाना होता है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि परिवार के उपभोक्ताओं की पसंद-नापसंद के चलते उस पर नियंत्रण होता है। यही पसंद-नापसंद परोसे जाने वाले भोजन के यथेष्ट स्वरूप को तय करती है।

13.5.7 औद्योगीकरण और नगरीकरण का प्रभाव

बढ़ते औद्योगीकरण और नगरीकरण के फलस्वरूप शहरी समाज में नौकरी-पेशा करने वाले युगलों की संख्या भी बढ़ रही है। ऐसे में पति-पत्नी में एक दूसरे की मदद करने की जरूरत भी बढ़ी है इसलिए वे घर के कामकाज मिलजुलकर और कई मामलों में एक दूसरे का सहयोग करने लगे हैं। ऐसा भी देखने में आता है कि जिन पतियों के काम की पारी अलग होती है वे अपनी पत्नियों के काम पर जाने के बाद घर पर बच्चों की देखभाल करते हैं। यही नहीं पति घर के काम-काज में भी पत्नियों का हाथ बंटाते हैं। मगर इस तरह के बदलावों के बावजूद दोनों लिंगों में विद्यमान सूक्ष्म भेदभाव अब भी बदस्तूर जारी हैं।

13.6 सारांश

इस इकाई में हमने यह जाना कि सामाजिक-लिंग सोच जन्य पूर्वाग्रह या विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के प्रति बरते जाने वाले सूक्ष्य भेदभाव किस तरह विश्व के विभिन्न हिस्सों विशेषकर पितृसत्तात्मक समाजों में व्याप्त हैं जो पुरुषों के हितों की पूर्ति करते हैं।

13.7 शब्दावली

रूढ़िप्ररूप : एक निश्चित स्वरूप, विशेषता या छवि

पितृसत्ता : ऐसा कुल जिसका मुखिया पुरुष होता है और जिसमें वंश पुरुष वंशक्रम के आधार पर तय होता है

समाजीकरण : बुनियादी सामाजिक प्रक्रिया जिसके जरिए व्यक्ति एक सामाजिक समूह की संस्कृति और उस समूह में अपनी भूमिका में ढलकर उसका अंग बन जाता है।

उद्यानकृषि समाज: ऐसा समाज जिसका मुख्य धंधा फूल, साग-सब्जी, फल और पौधे उगाना है।

जनसांख्यिकविद : मानव जनसंख्या के आकार, जन्म, मृत्यु इत्यादि आंकड़ों के विज्ञान का अध्ययन करने वाला अध्येता।

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कैरोलीन, बी. बेटल, कैरोलीन, एफ. सार्जेंट (संपा) (1993); जेंडर इन *क्रॉस कल्चरल पर्सपेक्टिव*, न्यू जर्सी, प्रेंटिस हॉल

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) a) सही

   b) गलत

   c) सही

2) a) जार्ज पीटर मुरडोक

   b) मार्गरेट मीड

बोध प्रश्न 2

1) श्रम के लैंगिक विभाजन पर होने वाले शोध का प्रयास सिर्फ विभिन्न अर्थोपार्जन विधियों वाले समाजों में महिलाओं के उत्पादक क्रिया कलापों का ही वर्णन करना नहीं होता। बल्कि इसमें महिलाओं की स्थिति पर इन क्रियाकलापों के प्रभावों का मूल्यांकन भी किया जाता है।

2) ग्रामीण उत्तरी भारत में बेटे की चाहत लोगों में सबसे ज्यादा पाई जाती है। बेटों को आर्थिक आस्ती माना जाता है।, खेती-बाड़ी के लिए उन्हीं की जरूरत पड़ती है और जब वे जीवकोपार्जन के लिए गांव छोड़कर शहर चले जाते हैं तो वे अपने परिवार की आमदनी का स्रोत बनते हैं। विवाह के बाद बेटे अपने परिवार के साथ ही रहते हैं और बुढ़ापे में मां-बाप की सेवा करते हैं। बेटे विवाह में दहेज भी लाते हैं। पिता की मृत्यु के बाद होने वाले संस्कारों को अंजाम देने के लिए बेटों की आवश्यकता पड़ती है।

3) एंजेल्स लीकॉक के अनुसार आरंभिक सामुदायिक समाज में स्त्री-पुरुष के बीच श्रम का लैंगिक विभाजन पारस्परिक था और पत्नी और बच्चे पति पर आश्रित नहीं थे। पुरुष के कार्य के सार्वजनिक क्षेत्र और महिलाओं के घरेलू कामकाज के निजी क्षेत्र के बीच कोई भेदभाव नहीं था। समुदाय ही वृहत्तर सामूहिक कुटुंब था और स्त्री-पुरुष दोनों जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए मिलकर काम करते थे। महिलाओं का शोषण पृथक इकाई के रूप में व्यक्तिगत परिवार के उदय के साथ आरंभ हुआ और तभी से महिलाओं के श्रम को परिवार के संदर्भ में एक निजी सेवा माना जाने लगा।